International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

१७ वीं सदी में भारत में राजनीतिक संघर्ष

सुनीता रंजन टोप्पो

सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, गुलजारबाग, पटना, बिहार.

सार:
यह शोधपत्र पुरातन काल, विशेष रूप से सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत और एशिया में व्याप्त सांस्कृतिक, आर्थिक और देश संबंधी मुद्दों का विवरण प्रस्तुत करता है। भारत में सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध प्रगति और विकास का युग था। इस दौरान मुगल साम्राज्य पर दो सक्षम शासकों, जहांगीर (१६०५-२७) और शाहजहाँ (१६२८-१६५८) का शासन रहा। दक्षिण भारत के बीजापुर और गोलकोंडा राज्य भी आंतरिक शांति और सांस्कृतिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करने में सक्षम थे। यह अध्ययन सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में हुए राजनीतिक घटनाक्रमों का विश्लेषण करता है, जिसमें मुगलों द्वारा सत्ता बनाए रखने के प्रयासों और उनके द्वारा सामना किए गए प्रतिरोध पर विशेष ध्यान दिया गया है। मुल्तान से काबुल तक फैला यह क्षेत्र व्यापार और रक्षा के लिए रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण था, लेकिन अपने ऊबड़-खाबड़ भूभाग और शक्तिशाली जनजातीय समूहों के कारण इस पर नियंत्रण करना कठिन बना रहा। बाबर से लेकर औरंगजेब तक मुगल शासकों ने सीमा को सुरक्षित करने के लिए सैन्य अभियान, किलेबंदी, कूटनीति और आर्थिक सहायता का सहारा लिया। इन उपायों के बावजूद, अफगान कबायली विद्रोह, सफवीदों के हाथों कंधार का पतन और गुरु हरगोबिंद, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविंद सिंह के नेतृत्व में सिखों के बढ़ते सैन्यीकरण ने पंजाब और काबुल में मुगल प्रभाव को लगातार कमजोर किया। क्षेत्रीय पहचान और सामाजिक-आर्थिक असंतोष ने शाही शासन के विरोध को और भी मजबूत किया। अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ तक, सफवी साम्राज्य के पतन और स्वतंत्र अफगान शक्तियों के उदय ने अस्थिरता को और गहरा कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप सीमा पर मुगल नियंत्रण कमजोर हो गया। इस पेपर में हम चर्चा करेंगे. १७वीं सदी में भारत में राजनीतिक संघर्ष

बीज शब्द: राजनीतिक संघर्ष, ब्रिटिश साम्राज्य, विकास, संस्कृति, मुगल साम्राज्य, आर्थिक समृद्धि, यूरोपीय उपनिवेशवाद, क्षेत्रीय शक्तियाँ, कृषि, व्यापार

परिचय:
सन् १७०० से १९०० के बीच भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की शुरुआत और विकास हुआ। साम्राज्य की कोई योजना नहीं थी, कम से कम शुरुआती दौर में तो बिल्कुल नहीं। एक तरह से देखा जाए तो यह बस यूं ही अस्तित्व में आ गया। भारत में आने वाले पहले अंग्रेज व्यापार के लिए आए थे, न कि क्षेत्र के लिए; वे व्यापारी थे, विजेता नहीं। यह तर्क दिया जा सकता है कि वे जिस संस्कृति और राजनीतिक इकाई में आए थे, वह उस संस्कृति से कहीं अधिक हीन थी जिसमें उन्होंने कदम रखा था, और वे भीख मांगते हुए आए थे। भारतीयों ने उन्हें किसी खतरे के रूप में नहीं देखा होगा—क्योंकि वे निश्चित रूप से खुद को "भारतीय" नहीं मानते थे, कम से कम किसी भी राजनीतिक अर्थ में तो नहीं। राष्ट्रीय पहचान बहुत बाद में, स्वतंत्रता आंदोलन (जिसे राष्ट्रवादी आंदोलन के नाम से भी जाना जाता है) के दौरान स्थापित हुई। पहचान क्षेत्र और जाति के आधार पर थी, जो काफी हद तक आज भी है। [१-२]
सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत ने महत्वपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास देखे। यह काल मुगल साम्राज्य के उत्तरार्ध, क्षेत्रीय शक्तियों के उदय और यूरोपीय उपनिवेशवाद के आगमन से चिह्नित था।

इस काल में भारत के कुछ प्रमुख पहलू इस प्रकार हैं:

मुगल साम्राज्य: इस अवधि में जहांगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल साम्राज्य भारत में एक प्रमुख शक्ति बना रहा। मुगल अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए जाने जाते थे, जिनमें शाहजहाँ के शासनकाल में ताजमहल जैसे प्रतिष्ठित स्मारकों का निर्माण शामिल है।

आर्थिक समृद्धि: इस काल में मुगल साम्राज्य विश्व की अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं में से एक था। यह एक स्थिर कृषि अर्थव्यवस्था, व्यापार और कराधान पर फलता-फूलता था। मुगल शासकों ने जमींदारी प्रणाली के नाम से जानी जाने वाली भू-राजस्व प्रणाली स्थापित की, जिसने संसाधनों के जुटाव में सहायता की।

कला और संस्कृति: सत्रहवीं शताब्दी मुगल कला और संस्कृति का स्वर्ण युग था। इस शताब्दी में मुगल लघु चित्रकला का विकास हुआ, जिसमें अबू हसन और उस्ताद मंसूर जैसे कलाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। साहित्य और कविता भी फली-फूली, जिसमें मीर तकी मीर और अब्दुल रहीम खान-ए-खाना जैसे कवियों की रचनाएँ प्रमुखता प्राप्त कर गईं।

धार्मिक नीतियाँ: अकबर की धार्मिक सहिष्णुता नीतियाँ, जिन्हें "सुलह-ए-कुल" के नाम से जाना जाता है, इस काल में भी मुगल साम्राज्य को प्रभावित करती रहीं। हालाँकि, सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औरंगजेब के शासनकाल में अधिक रूढ़िवादी और रूढ़िवादी नीतियों की ओर बदलाव आया, जिससे विभिन्न धार्मिक समुदायों के साथ संघर्ष हुए।

यूरोपीय उपनिवेशवाद: सत्रहवीं शताब्दी भारत में यूरोपीय उपनिवेशवाद की शुरुआत का प्रतीक थी। अंग्रेजों, डचों, फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों ने भारत के तटों पर व्यापारिक चौकियाँ और किले स्थापित किए। उन्होंने धीरे-धीरे अपना प्रभाव बढ़ाया और बाद के औपनिवेशिक शासन की नींव रखी।

क्षेत्रीय शक्तियाँ: मुगलों के अलावा, इस काल में कई क्षेत्रीय शक्तियाँ और राज्य उभरे। मराठा, सिख और राजपूत कुछ प्रमुख क्षेत्रीय शक्तियाँ थीं जिन्होंने भारत के विभिन्न भागों में अपना प्रभाव डाला।.

दक्कन सल्तनतें: दक्षिण भारत के दक्कन क्षेत्र में, गोलकोंडा के कुतुब शाही और बीजापुर के आदिल शाही सहित विभिन्न सल्तनतें इस काल में महत्वपूर्ण क्षेत्रीय शक्ति थीं। उन्होंने क्षेत्रीय नियंत्रण को लेकर मुगलों के साथ संघर्ष किया।

कृषि और व्यापार: कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनी रही। कपास और नील जैसी नकदी फसलों के उत्पादन के साथ-साथ फलते-फूलते वस्त्र उद्योग ने भारत की आर्थिक समृद्धि में योगदान दिया। मध्य पूर्व, दक्षिण पूर्व एशिया और यूरोप के साथ व्यापारिक संबंधों के कारण घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

चुनौतियाँ और पतन: अपनी वैभवशाली स्थिति के बावजूद, मुगल साम्राज्य को बाहरी आक्रमणों, क्षेत्रीय विद्रोहों और आर्थिक दबावों जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। बाद के मुगल सम्राटों, विशेष रूप से औरंगजेब को, कई ऐसे संघर्षों से जूझना पड़ा जिनसे साम्राज्य कमजोर हुआ। [३-४]

भारत में सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मुगल साम्राज्य का निरंतर प्रभुत्व, समृद्ध सांस्कृतिक और कलात्मक परिदृश्य, क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों की प्रारंभिक उपस्थिति देखी गई। इस काल ने उन जटिल राजनीतिक और आर्थिक गतिकी की नींव रखी, जो आने वाली शताब्दियों में भारत को आकार देंगी।

उत्तर-पश्चिमी सीमा पर नियंत्रण के लिए मुगलों के प्रयास

चित्र १: भारत में एक सैन्य जुलूस।

(चित्र स्रोत: ब्रिटिश बैटल वेबसाइट http://www.britishbattles.com/first-sikh-war/ferozeshah.htm)

१७वीं शताब्दी में, मुगल साम्राज्य के व्यापक संदर्भ और स्थानीय शक्तियों के उदय तथा विदेशी खतरों के कारण, भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र, जिसमें वर्तमान अफगानिस्तान और आधुनिक पाकिस्तान के कुछ भाग शामिल हैं, में महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हुए। इस दौरान, अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब जैसे सम्राटों के शासनकाल में मुगल साम्राज्य अपने चरम पर था। इन सम्राटों का उद्देश्य उत्तर-पश्चिम पर नियंत्रण मजबूत करना और प्रमुख क्षेत्रों तथा व्यापार मार्गों की रक्षा करना था। उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र का समृद्ध इतिहास है, जो मौर्य, कुषाण, गुप्त, दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य जैसी कई सभ्यताओं और साम्राज्यों से प्रभावित है। भारत और मध्य एशिया के बीच इसकी रणनीतिक स्थिति ने व्यापार, संस्कृति और राजनीति को प्रभावित किया है। यह क्षेत्र, जो पंजाब को काबुल से अलग करता है, बलूचिस्तान से कश्मीर तक फैला एक ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी इलाका है और यहाँ क्रूर जनजातियाँ निवास करती हैं। इसमें खैबर, बोलन, कुर्रम, तोची और गोमल जैसे महत्वपूर्ण दर्रे शामिल हैं, जो ऐतिहासिक रूप से भारतीय उपमहाद्वीप में विदेशी आक्रमणकारियों के लिए प्रमुख प्रवेश द्वार रहे हैं। [५]

महान मुगलों ने अपनी उत्तर-पश्चिमी सीमा की रक्षा पर ध्यान केंद्रित किया, जो ईरान और मध्य एशिया से लगती होने के कारण महत्वपूर्ण थी। उन्होंने कूटनीति के माध्यम से पश्चिम और मध्य एशिया में शत्रुतापूर्ण गठबंधनों को रोकने का प्रयास किया और काबुल में एक मजबूत सैन्य उपस्थिति स्थापित की, जिसका उद्देश्य कंधार को सुरक्षित करना था, जिसे काबुल और इस प्रकार भारत के लिए एक महत्वपूर्ण प्रवेश द्वार माना जाता था। इसके अलावा, स्थानीय स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए, अफगान और आदिवासी आबादी को आर्थिक सहायता दी गई। अपनी सीमा नीति को लागू करने के लिए, मुगलों ने सक्षम सरदारों को काबुल के राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया। [६-८]

भारत में राजनीतिक और प्रशासनिक विकास

- मुगल शासकों ने अकबर द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया।
- उन्होंने राजपूतों के साथ अपना गठबंधन बनाए रखा और अफ़गानों और मराठों जैसे शक्तिशाली समूहों के साथ गठबंधन करके साम्राज्य के राजनीतिक आधार को व्यापक बनाने का प्रयास किया।
- उन्होंने अपनी राजधानियों को सुंदर इमारतों से सजाया, जिनमें से कई संगमरमर से बनी थीं, और मुगल दरबार को देश के सांस्कृतिक जीवन का केंद्र बनाने का प्रयास किया।
- मुगलों ने ईरान, उज़्बेक और ओटोमन तुर्कों जैसी पड़ोसी एशियाई शक्तियों के साथ भारत के संबंधों को स्थिर करने में सहायता की, जिससे भारत के विदेशी व्यापार के अवसर बढ़े।

- विभिन्न यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों को दी गई व्यापारिक रियायतों का उद्देश्य भी भारत के विदेशी व्यापार को बढ़ावा देना था।
- हालांकि, इस अवधि के दौरान कई नकारात्मक पहलू भी सामने आए। शासक वर्ग की बढ़ती समृद्धि किसानों और श्रमिकों तक नहीं पहुंची, जिनका जीवन कठिन और दयनीय बना रहा।
- मुगल शासक वर्ग पश्चिम में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति से अनभिज्ञ था।
- सिंहासनारोहण का मुद्दा अस्थिरता का कारण बना, जिससे राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ आर्थिक और सांस्कृतिक विकास भी खतरे में पड़ गया। [९]

भारत में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष की उत्पत्ति

चित्र २: भारत में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष की उत्पत्ति

औरंगज़ेब के शासनकाल में, उन्होंने सांस्कृतिक समझौते की प्रथा को तोड़ते हुए हिंदुओं के प्रति दमनकारी नीतियों की एक श्रृंखला लागू की, जिनमें सबसे प्रमुख १६७९ में गैर-मुसलमानों पर लगाए जाने वाले कर, जजिया की पुनः शुरुआत थी। पश्चिमी भारत के एक योद्धा कबीले, मराठों ने इस कर का कड़ा विरोध किया। उन्होंने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया और ऐसा करते हुए, उन्होंने अपने विद्रोह को मजबूत करने के लिए स्पष्ट रूप से हिंदू धर्म और उसके प्रतीकों का इस्तेमाल किया।

भारतीय राजनीति के कई विद्वानों ने उग्रवादी हिंदू राष्ट्रवादी समूहों को समकालीन दंगों का एक प्रमुख कारण बताया है। हिंदुत्व के बीज उन क्षेत्रों में बोए गए थे जहाँ मुगलों और मराठों के बीच व्यापक संघर्ष हुआ था - मुख्य रूप से आधुनिक महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों में। संक्षेप में, १७वीं शताब्दी के भारत के सबसे युद्धग्रस्त क्षेत्रों में हिंदू राष्ट्रवादी समूह उभरे, समय के साथ राजनीतिक व्यवस्था में संस्थागत रूप ले लिया, और ये वही समूह हैं जो आज मुसलमानों के विरुद्ध हिंसा को व्यवस्थित रूप से भड़काते हैं। [१०]

मुगल शासन और मराठा

अठारहवीं शताब्दी में मुगल शासन के पतन के साथ ही, उसके साम्राज्य का अधिकांश भाग मराठों के अधीन आ गया। अराजकता और मुगल साम्राज्य के पतन ने इस्लाम के पुनरुद्धार और शुद्धिकरण की इच्छा को जन्म दिया, जबकि मराठों की सफलता से प्रेरित होकर हिंदू पुनरुत्थानवाद को भी बल मिला। पूर्वी सीमांत में, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर नियंत्रण करना शुरू कर दिया, विशेष रूप से १७५७ में प्लासी के युद्ध के बाद। युद्ध के बाद बंगाल की स्वतंत्रता छिन जाने पर, सत्ता संभालने वाले कंपनी के अधिपति ने विभिन्न राजस्व कानून लागू किए, जो मुख्य रूप से मुस्लिम जमींदारों की तुलना में बैंकरों और साहूकारों के पक्ष में थे। इस नीतिगत परिवर्तन ने मुसलमानों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया और कई कुशल मुसलमानों को भूमिहीन मजदूर बनने पर मजबूर कर दिया।

ब्रिटिश शासन के पहले दशक में धर्मनिष्ठ मुसलमानों के लिए काफी कठिन समय रहा। देश के कानून पर नियंत्रण खो देने के कारण, उलेमाओं द्वारा मुसलमानों के लिए फतवों की बाढ़ आ गई। इससे मुसलमानों की दैनिक गतिविधियों पर उलेमाओं का नियंत्रण हो गया और हिंदू धर्म और ब्रिटिश भारत दोनों से संबंधित रीति-रिवाजों का पालन करने वाले मुसलमान अलग-थलग पड़ गए। जैसे-जैसे अंग्रेजों ने भारतीय समाज पर अधिकाधिक नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया, हिंदू भी उनकी नीतियों से असंतुष्ट होते चले गए। विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति देना, महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देना और सती प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून लाना; हिंदुओं के रीति-रिवाजों और परंपराओं के लिए खतरा माना गया। [११]

हिंदू-मुस्लिम संघर्षों में अंग्रेजों की भूमिका

हिंदू-मुसलमानों के बीच नफरत के बीज बोने में अंग्रेजों की मदद करने वाली घटनाओं में से एक १८७१ की भारत की जनगणना थी। जनगणना से औपचारिक रूप से पता चला कि बंगाल की कुल आबादी का लगभग आधा हिस्सा मुसलमान था, जिनमें से अधिकांश पूर्वी बंगाल के निचले इलाकों में रहते थे, जो वर्तमान बांग्लादेश का हिस्सा है। हालाँकि, प्रांत की सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में मुसलमानों की जनसंख्यागत प्रधानता परिलक्षित नहीं हुई। एक समुदाय के रूप में, वे ज्यादातर हिंदुओं के स्वामित्व वाली जमीनों पर काम करने वाले किरायेदार किसान और कृषि मजदूर थे। मुस्लिम मजदूरों द्वारा झेली गई कठिनाई प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों द्वारा लागू की गई नीतियों के कारण थी। हालाँकि, एक ऐसी कहानी गढ़ी गई कि मुसलमानों को नुकसान हुआ क्योंकि उन्होंने सत्ता खो दी थी। मुसलमानों के सामने एक आर्थिक समस्या थी जिसका आर्थिक समाधान आवश्यक था। इसके बजाय, अंग्रेजों ने आम लोगों के दिमाग में सांप्रदायिक जहर घोल दिया। यह अंग्रेजों द्वारा किया गया एक उत्कृष्ट छल था, जिसने वर्षों बाद भारत के विभाजन को सुनिश्चित किया। [१२]

उद्देश्य:

- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत के कुछ प्रमुख पहलुओं का अध्ययन करना
- भारत में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष की उत्पत्ति की व्याख्या करना
- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत में हुए राजनीतिक संघर्षों का अध्ययन करना।

साहित्य की समीक्षा:

भारत में मुगल काल का आरंभ १५२० के दशक में दिल्ली में लोदी सल्तनत पर तैमूरिद राजकुमार बाबर की विजय के साथ हुआ। बाद के शासकों ने धीरे-धीरे भारत के अधिकांश भाग पर अपना शासन फैलाया और मुगल साम्राज्य १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औरंगजेब के शासनकाल में अपने सबसे बड़े भौगोलिक विस्तार तक पहुंचा। जैसा कि आलम और सुब्रह्मण्यम बताते हैं, "औरंगजेब का शासन एक विशाल साम्राज्य पर था जो दक्षिण भारत तक फैला हुआ था, साथ ही बर्मा की सीमाओं से लेकर लगभग मध्य एशिया तक फैला हुआ था।" १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के बाद, राज्य का दायरा कम हो गया और उसकी सत्ता क्षीण हो गई। हालांकि मुगल राज्य कभी भी एकात्मक नहीं था—जैसा कि आलम और सुब्रह्मण्यम तर्क देते हैं, यह "दीवार से दीवार तक बिछे कालीन की तरह नहीं, बल्कि 'पैचवर्क रजाई' की तरह था"—औरंगजेब की मृत्यु के बाद इसकी राजनीतिक संरचना "क्षेत्रीय राज्यों और साम्राज्यों के उदय" से स्पष्ट रूप से चिह्नित थी, जो बहुल संप्रभुता के प्रतिरूप को दर्शाती है। इनमें से कुछ राज्यों और साम्राज्यों ने मुगल-पूर्व काल में मौजूद क्षेत्रीय राज्यों की सीमाओं को फिर से स्थापित किया, जबकि अन्य उभरते हुए जातीय और धार्मिक समूहों, जैसे मराठा और सिख, के इर्द-गिर्द संगठित होने लगे, हालांकि नाममात्र रूप से अभी भी मुगल संप्रभुता के विचार के अधीन थे।

महाराजा रणजीत सिंह का सिख साम्राज्य १९वीं शताब्दी में पंजाब के अधिकांश भाग में स्थापित हुआ था। [१३]
यह शोधपत्र इतिहास के उस महत्वपूर्ण साहित्य से सबसे अधिक संबंधित है जो हिंदू-मुस्लिम संघर्ष को भड़काने में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की भूमिका का विश्लेषण करता है। भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अक्सर दावा किया

है कि अंग्रेजों ने फूट डालो और राज करो की रणनीति अपनाई, जिससे समुदायों के बीच दरारें पैदा हुईं और बाद में धार्मिक हिंसा की नींव पड़ी (मेहता)। [१४]

गैर-पश्चिमी दुनिया में इन जातीय संघर्षों की उत्पत्ति का अध्ययन करने वाले राजनीतिक वैज्ञानिकों ने अक्सर यूरोपीय उपनिवेशवाद के प्रभाव पर ध्यान केंद्रित किया है, एक ऐसा दृष्टिकोण जिसे मोटे तौर पर तीन तर्कों में सारांशित किया जा सकता है। पहला, विद्वानों का तर्क है कि औपनिवेशिक शासन से पहले जातीय समूह अस्पष्ट थे, और औपनिवेशिक काल से पहले हिंसा दुर्लभ थी क्योंकि विभिन्न समुदायों के बीच लचीली सीमाओं ने सहिष्णुता और सह-अस्तित्व को बढ़ावा दिया था। दूसरा, औपनिवेशिक प्रशासकों ने जनगणना करने, मानचित्र बनाने और संग्रहालयों का निर्माण करने जैसी राज्य-निर्माण प्रक्रियाओं के माध्यम से आधुनिक जातीय समूहों का "निर्माण" किया। अंत में, औपनिवेशिक साम्राज्यों ने जातीय पक्षपात और "बांटो और राज करो" की नीतियां लागू कीं, जिससे अंततः समूह संघर्ष उत्पन्न हुआ। मैथ्यू लैंग व्यापक साहित्य का सारांश प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि "अधिकांश अफ्रीका और एशिया के लिए, आधुनिकता का निर्माण करने वाली सामाजिक प्रक्रियाएं उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में ही एक प्रमुख परिवर्तनकारी शक्ति बनीं," और इसलिए जातीय हिंसा को "आधुनिक खतरा" माना जाना चाहिए। [१५]

निष्कर्ष:

मुगल साम्राज्य की स्थापना और यूरोपियों, विशेषकर अंग्रेजों के आगमन ने भारत के इतिहास को विश्वव्यापी व्यापक ऐतिहासिक आंदोलनों से जोड़ दिया। मुगलों ने लोगों और वस्तुओं के व्यापक आवागमन के माध्यम से भारत को फारस और मध्य एशिया से जोड़ा, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने मुसलमानों और हिंदुओं के बीच नए मेल-मिलाप और सामंजस्य स्थापित किए। लगभग उसी समय, यूरोपीय हिंद महासागर बेसिन में व्यापारिक चौकियाँ और किले स्थापित कर रहे थे, जिससे इन व्यापार मार्गों पर प्रभुत्व रखने वाले अरब और भारतीय व्यापारियों को चुनौती मिल रही थी। समय बीतने के साथ, यूरोपीय इस क्षेत्र की राजनीति में आक्रामक रूप से शामिल हो गए, जिसके परिणामस्वरूप अंततः उपमहाद्वीप पर उनका औपनिवेशिक शासन स्थापित हुआ।

संदर्भ:

१. निज्जर, डॉ. बी.एस., पंजाब अंडर द पोस्ट मुगल्स, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर, १९७२, पृष्ठ १७-२५।
२. चंद्र, सतीश, पार्टीज़ एंड पॉलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट (१७०७-१७४०), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९५९, पृष्ठ २४२।
३. इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस, सुपरिंटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, १९०८, पृष्ठ १६-१७, डॉ. बी.एस. निज्जर, उपर्युक्त, पृष्ठ १९।
४. सतीश चंद्र, पार्टीज़ एंड पॉलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, १७०७-१७४०, (प्रथम प्रकाशन १९५९), अलीगढ़, १९७९, पृष्ठ १४-११।
५. इरफान हबीब, मुगल भारत की कृषि प्रणाली, १५५६-१७०७, बॉम्बे, १९६३, पृष्ठ ३१७-५१।
६. जे.एन. सरकार, औरंगजेब का इतिहास, कलकत्ता, १९१६, पृष्ठ २८३-३६४।
७. रॉय, कौशिक। "पूर्व-औपनिवेशिक दक्षिण एशिया में लघु युद्ध, पारिस्थितिकी और साम्राज्यवाद: मुगल-अहोम संघर्ष का एक केस स्टडी, १६१५-१६८२।" जर्नल ऑफ मिलिट्री हिस्ट्री ८७.१ (२०२३) पृ. १-३१।
८. आचार्य, एन. एन. मध्यकालीन असम का इतिहास: (तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक); अहोम शासन के पहले चार शताब्दियों के दौरान असम का एक आलोचनात्मक और व्यापक इतिहास, मूल असमिया स्रोतों पर आधारित, जो भारत और इंग्लैंड दोनों में उपलब्ध हैं (१९९२) ऑनलाइन।
९. रिचर्ड्स, जॉन एफ. (१९९५)। मुगल साम्राज्य। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। ISBN ०५२१५६६०३७। २६ जनवरी २०१३ को प्राप्त किया गया।

१०. वर्शनी, आशुतोष, और स्टीवन विल्किंसन। २००६. भारत में हिंदू-मुस्लिम हिंसा पर वर्शनी-विल्किंसन डेटासेट, १९५०-१९९५, संस्करण २. ICPSR०४३४२-v१.
११. टिली, चार्ल्स. १९९२. जबरदस्ती, पूंजी और यूरोपीय राज्य, ९९०-१९९० ई. ब्लैकवेल: ऑक्सफोर्ड.
१२. श्वार्ट्ज, रेजिना एम. १९९८. केन का अभिशाप: एकेश्वरवाद की हिंसक विरासत. शिकागो: शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस.
१३. आलम, मुजफ्फर और सुब्रह्मण्यम, संजय, २००१. "परिचय" आलम, मुजफ्फर और सुब्रह्मण्यम, संजय, संपादक, मुगल राज्य: १५२६-१७५० (नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस). गूगल स्कॉलर
१४. मेहता, अशोक और अच्युत पटवर्धन. १९४२. भारत में सांप्रदायिक त्रिकोण. किताबिस्तान.
१५. लैंग (२०१७): ४४ और ६०.